'ब्रह्म सत्यं जगत् स्फूर्तिः, जीवनं सत्यशोधनम्'

विनोबा-प्रवचन

(सप्ताह में तीन बार—मंगल, गुरु और शनि को प्रकाशित)

वर्ष ३, अंक ७२ | वाराणसी, गुरुवार, १८ जून, १९५९ | पचीस रुपया वार्षिक

तालीमी संघ की बैठक में — पठानकोट, २०-५-'५९

तालीमी संघ और सर्व-सेवा-संघ का संगम आवश्यक क्यों है ?

मैंने राजपुरा में एक सुझाव दिया था कि नयी तालीम के सामने अब जो सवाल पेश हैं, उन सवालों को पूरा न्याय हम तब दे सकेंगे, जब हमारे सेवकों की कुल जमात नयी तालीम के बारे में सोचनेवाली और काम करनेवाली बनेगी। आज जो छोटा तालीमी संघ बना है, वही नयी तालीम के बारे में सब कुछ सोचने की कोशिश करता है। एक जमाना था, जब यह जरूरी था कि इस प्रकार का एक संघ बने। लेकिन अब ऐसी परिस्थिति आ गयी है कि उसमें तालीमी संघ का व्यापक रूप बनेगा और वह सर्व-सेवा-संघ में विलीन होगा तो बहुत लाभ होगा। चार साल पहले भी इस तरह का सुझाव पेश किया गया था, लेकिन उस वक्त मैंने इस विषय में कोई खास आग्रह नहीं किया था। परन्तु इस बात को पसन्द किया था कि उसकी चर्चा हो। फिर जब सबने आपस में सलाह करके मेरे सामने बात रखी तो मैंने उसको मान लिया और वह मीटिंग पाँच मिनट में खत्म हुई। धीरेन्द्र भाई ने कहा कि 'अभी जैसा चलता है, वैसा ही चलने दिया जाय। अभी इतनी मानसिक तैयारी नहीं हुई है कि तालीमी संघ सर्व-सेवा-संघ में विलीन हो जाय।' उस वक्त मैंने आग्रह नहीं रखा था। लेकिन अभी आग्रहपूर्वक सुझाव रखा। इसमें मेरा कोई व्यक्तिगत आग्रह नहीं है। आज की परिस्थिति को देखते हुए मुझे यह करना जरूरी मालूम होता है।

काकासाहब का सुझाव

काकासाहब ने दो-तीन साल पहले सुझाया था कि नयी तालीम को एक प्रोग्राम के तौर पर भूदान के साथ सम्मिलित किया जाय। उस वक्त मेरी ऐसी तैयारी नहीं थी कि एक प्रोग्राम के तौर पर मैं इसे भूदान के साथ चलाऊँ। मैं उतनी शक्ति महसूस नहीं करता था। वैसे दो-तीन बातें एकसाथ रखने से लाभ ही होता है, व्यापक दृष्टि बनती है। अनेक लोगों का सहयोग हासिल हो सकता है। लेकिन पूरी ताकत महसूस न होती हो तो अनेक काम एक साथ ले लेने से शक्ति नहीं बनती, लोगों का चित्त एकाग्र नहीं होता। इसलिए मैं उस वक्त काकासाहब के सुझाव को स्वीकार नहीं कर सका। मैंने भूदान के साथ केवल ग्रामोद्योग को जोड़ दिया था। लेकिन अनुभव यह रहा कि वह सिर्फ जोड़ ही दिया गया, उस पर ज्यादा जोर नहीं दिया गया। फिर अम्बरचरखे की खोज के बाद उसमें कुछ ताकत लगी। अब वह चीज प्लानिंग कमीशन भी मानती है। शान्ति-सेना के बारे में काकासाहब ने पहले ही सुझाव दिया था। यद्यपि वह पहले से ही मुझे उचित मालूम होता था, पर शक्ति के अभाव में मैं उसकी तरफ ध्यान नहीं दे सका। मैंने सोचा था कि १९५७ तक दूसरी चीजों की ओर ज्यादा ध्यान न दिया जाय। जैसे ही ५७ की समाप्ति आयी, वैसे ही इन विचारों के साथ-साथ समग्र विचार भी सामने आया। खासकर जब येलवाल की परिषद् में नेताओं ने ग्रामदान को आशीर्वाद तथा नैतिक समर्थन देते हुए कहा कि 'ग्रामदान से नैतिक और भौतिक दोनों प्रकार की उन्नति होगी, इसलिए यह कार्यक्रम चलना चाहिए', तब मुझे लगा कि अब हमारे विचार पर मुहर लग गयी। गांधीजी ने हमें जो वस्तु दी थी, शायद उसका अब हम समाज से स्वीकार करवा सकते हैं। हमारा विचार लोकमान्य हुआ, यद्यपि अभी उसे लोकप्रिय करने का काम बाकी है। यह तो चलता ही रहेगा। इसलिए येलवाल-परिषद् के बाद मैंने शांति-सेना पर जोर दिया।

जनमत की तैयारी आवश्यक

मैसूर-यात्रा में देश भर के डी० पी० आई० मुझसे मिलने आये। उनके साथ नयी तालीम के बारे में काफी चर्चा हुई। मैंने देखा कि वहाँ पर जो आये थे, वे नयी तालीम के प्रचार को दिल से चाहते थे। वैसे सरकार ने एक नीति तैयार की तो उसका प्रचार करना सरकारी नौकरों का काम है। लेकिन उन्हें उस काम के लिए मानसिक प्रेरणा हो तो दूसरी बात होती है। मुझ पर यह असर रहा कि सचमुच वे चाहते हैं कि उनके हाथ से कोई चीज बने। उन्होंने कई सवाल पूछे और मैंने उत्तर भी दिये तो उनको संतोष हुआ। तब से बीच-बीच में मैं नयी तालीम पर जोर देता ही रहा। लेकिन इन दिनों मुझे लगा कि लोगों में उसका प्रचार हो। हमारे कुल काम के लिए सरकार में एक प्रकार की अनुकूलता है। लेकिन वह इस प्रकार की है कि 'उसके लिए लोकमत तैयार होता हो तो हम वह काम करेंगे', ऐसा सरकार कहती है। सरकार ने सिंदरी की फैक्टरी खोली, तब नहीं सोचा कि

लोकमत तैयार है या नहीं, क्योंकि उसका एक आर्थिक विचार है, उसके मुताबिक वह चलती है और उसके लिए उसे लोगों से पूछने की जरूरत महसूस नहीं होती! वह समझती है कि हम लोगों की चुनी हुई है, इसलिए सरकार जो करे, वह लोगों को मान्य ही है। परन्तु गांधीजी के प्रोग्राम अर्थशास्त्र में बैठते हैं या नहीं, ऐसा वह सोचती है; क्योंकि उसके खिलाफ दुनिया का सारा प्रवाह खड़ा है, अतः उसके लिए लोकमत चाहिए।

इन दिनों कुछ लोग कहते हैं कि पुरानी तालीम में कोई मौलिक दोष नहीं है, सिर्फ उसमें कुछ सुधार होने चाहिए। इस प्रकार का विचार मंत्री लोग भी पेश करते हैं। इस सबका सार मैंने यह देखा कि अब हमें लोगों में जाकर इसके लिए अनुकूलता पैदा करनी चाहिए। नयी तालीम की एक राष्ट्रीय पैमाने पर छानबीन हो, उसके गुण-दोषों की चर्चा हो, लोग अपने-अपने सुझाव पेश करें। जैसे भूदान के बारे में काफी चर्चा हुई, कुछ विरोध हुआ, कुछ त्रुटियाँ भी बतायी गयीं। उसी तरह लोकमत तैयार करने के खयाल से हम प्रचार करें। उसके बिना हमारी नयी तालीम के प्रयोग सीमित रह जायेंगे और जो नतीजा हम चाहते हैं, वह नहीं आयेगा। इसलिए मुझे लगा कि आज जो तालीमी संघ बना है, वह आम जनता में जाने में समर्थ नहीं होगा। जब सर्व-सेवा-संघ ही इस काम को उठायेगा, तभी यह काम हो सकता है। सर्व-सेवा-संघ की आज जितनी ताकत है, उतनी ५-६ साल पहले नहीं थी। लेकिन भूदान जैसा एक सामाजिक काम उसने चलाया, जिसमें सब लोगों का सहयोग उसे हासिल हुआ। इसलिए आज सर्व-सेवा-संघ नयी तालीम को उठाता है तो पूरी ताकत लगेगी।

संगम आवश्यक क्यों ?

मेरा विचार है कि अभी तक तालीमी संघ ने जो प्रयोग किये, वे एक हद तक पूरे हुए हैं। अगर हम उन्हीं प्रयोगों को फिर-फिर से करते हैं, उसमें कुछ नुक्स है तो सुधारते जाते हैं तो हमारा समय ही जायगा। नायकम्‌जी हमारी तमिलनाड की यात्रा में साथ रहे थे। उन्हें भी लगा कि अब नयी तालीम का रूप और भी नया होना चाहिए, बदलना चाहिए। अब ग्रामदान को ही स्कूल समझकर प्रयोग किया जाय। हमारा पुराना ढाँचा करीब २० साल तक चला। हमने उसका एक नमूना पेश किया। उसकी एक दिशा भी मिली। सरकार के सामने हमने वह चीज रखी है। अब उसे उठाना है तो वह उठा सकती है। उसमें परिवर्तन या परिवर्द्धन जो भी करना है, उसे करने का हक उसे है। यह केवल तालीमी संघ का काम नहीं है। कहने का तात्पर्य यह है कि नयी तालीम का प्रयोग पूरा हुआ, अब उसे दूसरा रूप देना चाहिए—यह विचार तालीमी संघ ने भी मान्य किया और वैसा प्रस्ताव भी कर लिया। तब मुझे लगा कि उस प्रस्ताव पर अमल करना हो तो सर्व-सेवा-संघ ही कर सकता है। आज की हालत में तालीमी संघ नहीं कर सकता। एक-दो जगह नमूना चाहे बता सके, परंतु सारे भारत में इस काम के लिए हवा तैयार करनी है तो वह काम पूरी शक्ति से ही होगा। इसलिए तालीमी संघ का और सर्व-सेवा-संघ का संगम होना ठीक है।

सरकार से कुछ काम करवाना होगा तो सरकार व्यापक काम ही करनेवाली है। एकदम सारे भारत पर लागू करने की बात आती है तो उसमें हमें कुछ बातें ढीली करनी पड़ती हैं। उसके बिना व्यापक प्रयोग नहीं हो सकते। परंतु ढीला करते समय कुछ बातों का आग्रह अवश्य रखना पड़ता है। नहीं तो कुछ का कुछ बनेगा। इसलिए सरकार के साथ ढील करने का काम भी पर्याप्त शक्ति से करना हो तो सर्व-सेवा-संघ ही कर सकता है। सरकार को यह मालूम हो कि इनकी कुल जमात इस बारे में सोचती है, जो कुछ जानकारी हासिल करनी है, सर्व सेवा संघ से ही हासिल करनी है—ऐसा हो जाय तो वह सरकार के लिए और हमारे लिए भी अच्छा है। नहीं तो कुछ एकांगीपन आ सकता है। सरकार अपना कुछ आग्रह रखेगी तो प्रेम के साथ उसका मुकाबला करना होगा। इस तरह कहीं ढील करनी होगी और कहीं दृढ़ता भी रखनी होगी।

नयी तालीम के सामने प्रश्न

इन दिनों नयी तालीम के दो टुकड़े करने की बात चलती है। पहला टुकड़ा पाँच साल का और दूसरा तीन साल का। कहा जाता है कि पहले विभाग को शुरू कर दिया जाय और बाद में दूसरे विभाग को चलाया जाय। यह जरूरी नहीं है कि पहला विभाग जितना व्यापक हो, उतना ही दूसरा भी हो। पहले विभाग को स्वयंपूर्ण मानकर काम किया जाय। मुझे तो यह खतरनाक मालूम होता है। संभव है, यह ठीक भी हो। अब इन सब विषयों पर हम सबको विचार करना होगा। योजना ठीक है या बे-ठीक, इस पर पूरी तरह सोचकर सरकार के सामने अपना विचार स्पष्ट रखना होगा। इन दिनों अंग्रेजी का सवाल भी उठा है। अंग्रेजी कहाँ से शुरू की जाय, चर्चा चलती है। यह सवाल नयी तालीम के सामने पेश है। फिर जब आगे जाकर कुल तालीम ही नयी तालीम बननेवाली है तो नयी तालीम का फर्ज है कि वह इस बारे में अपने विचार स्पष्टता से पेश करे। बम्बई-राज्य में अंग्रेजी की चर्चा बहुत चल रही है। यह तो सभी जानते हैं कि हमारे मन में अंग्रेजी के खिलाफ कोई पूर्वग्रह नहीं है। परंतु सारे देश की बुनियादी तालीम का यह उसूल हमने माना है कि बुनियादी तालीम में अंग्रेजी का प्रवेश न हो। सरकार अब इसका निर्णय करेगी तो इस बारे में हमारा विचार दृढ़ होना चाहिए। कई सवाल ऐसे हैं, जिन पर निर्णय न हो सकता हो तो हम उसकी चर्चा करके उसे छोड़ दें। लेकिन जिन पर सर्वसम्मति से निर्णय हो सकता है, वहाँ वह निर्णय सरकार के सामने पेश करना सर्व-सेवा-संघ का ही काम होना चाहिए, केवल तालीमी संघ का नहीं। सर्व-सेवा-संघ यह काम न करे तो मैं उसमें खतरा देखता हूँ। क्योंकि सरकार कुछ सोचती है तो अपनी पूरी शक्ति से सोचती है। फिर अगर हम अधूरी शक्ति से सोचते हैं तो हमारी बात नहीं चलेगी। हमारे लिए लोकमत अनुकूल न हो और फिर हमारी बात न चले, तब तो ठीक है। लेकिन हम अधूरी शक्ति से काम करेंगे तो लोकमत अनुकूल होने पर भी संभव है कि हमारी बात न चले। इसलिए छोटे संघ को नहीं, बड़े संघ को ही यह काम करना होगा।

सब काम तालीममूलक हों

हम खादी, ग्रामोद्योग, प्राकृतिक उपचार आदि काम करते हैं। वे सब सर्व-सेवा-संघ से संबंधित हैं। इन सबको नयी तालीम का अंग बनाना होगा। हमारे पास लाखों कत्तीनें हैं। देश में हमारे १००-२०० छोटे-मोटे आश्रम हैं, जिनके जरिये खादी, ग्रामोद्योग आदि काम चलते हैं। लेकिन उन कामों में नयी तालीम का कोई खास प्रवेश नहीं हुआ है। मैं यह चर्चा नहीं करना

चाहता कि किसका क्या दोष है। लेकिन हमारा समग्र चिंतन नहीं हुआ और हमारे प्रयोग जिस तरह व्यापक होने चाहिए थे, वैसे नहीं हुए। इसलिए अब सर्व-सेवा-संघ को इस काम को उठाना चाहिए और अपने कुल काम को नयी तालीम का रूप देना चाहिए। तब हमें अनुभव आयेगा कि व्यापक परिमाण में काम कैसे करना है। सरकार व्यापक काम करती है तो हम भी व्यापक हो सकते हैं। हमारे कुल कामों में करीब २०-२५ लाख व्यक्तियों से हमारा संबन्ध आता होगा। इतने व्यापक पैमाने पर काम कैसे किया जा सकता है—इसका कुछ नमूना हम पेश करें, इसकी देश को जरूरत है। हमारे सारे कार्य को नयी तालीम का रंग देना चाहिए, ऐसा मुझे लगा। रंगवाली चीज नयी तालीम होगी। वह पानी में घुल-मिल जाती है तो पानी को अपना रंग देगी।

शान्ति-सेना की जिम्मेवारी किस पर ?

मैं इन दिनों शांति-सेना की बात करता हूँ। यह स्पष्ट है कि हम अपने ढंग की जितनी तालीम चला सकेंगे, उतनी शांति-सेना ही बनती जायगी। एक तरह से यह जरूरी है कि हम सारे देश को व्याप्त कर लें, जो तालीम के जरिये कर सकते हैं। अगर शांति-सेना की जिम्मेदारी नयी तालीम की नहीं है तो और किसकी है ? शांति-सैनिकों को तालीम देनी है, वह काम भी तो नयी तालीम का ही होगा। शांति-सैनिक का नमूना पेश करना हो तो जहाँ नयी तालीम का शिक्षक खड़ा है, वहीं किया जा सकता है। उस शिक्षक का केवल बच्चों से ही नहीं, उनके माता-पिताओं से भी संबंध रहेगा। इस तरह वह शिक्षक शांति-सेना का केन्द्र बनेगा। बच्चों को और उनके पालकों को शांति-सेना के लिए तैयार करना शिक्षक का ही काम रहेगा। यह सब करने में सर्व-सेवा-संघ समर्थ होगा या नहीं, यह मैं नहीं जानता, लेकिन मैं मानता हूँ कि वह हो सकता है। देश में शांति-सेना के लिए व्यापक भावना तैयार करने की जिम्मेवारी सर्व-सेवा-संघ की है। बापू ने नयी तालीम के लिए कहा था कि इस तालीम का उद्देश्य पहले से लेकर आखिर तक सारे जीवन के बारे में सोचना है। इसीलिए मेरे मन में अपेक्षा पैदा हुई कि शांति-सेना का काम नयी तालीम का काम है। मुझे यह सुनकर खुशी हुई है कि नयी तालीम का काम करनेवालों को भी इसमें रुचि है। अभी तक शांति-सेना के शिक्षण का काम नयी तालीम के जरिये ही हुआ; लेकिन उसे व्यापक रूप नहीं मिला। अब उसमें खादीवाले, ग्रामोद्योगवाले आदि सबको शामिल होना चाहिए। इसीलिए सारी जमात को इकट्ठा होना चाहिए।

आत्मविद्या का अभाव

आज सेक्युलर स्टेट का एक विशिष्ट अर्थ लोगों के दिमाग में है। उसका परिणाम यह होता है कि तालीम में कुछ उद्योग आदि तो शुरू किये जाते हैं, लेकिन 'आत्मतत्त्व' के लिए जो मूलभूत श्रद्धा पैदा होनी चाहिए, उस तरफ ध्यान ही नहीं दिया जाता। कहीं भी हमारा आश्रम बनता है तो उसमें एक गोशाला होती है, कताई-विभाग, चर्मालय आदि होते हैं। हम प्रार्थना भी करते हैं, लेकिन वह एक 'रूटीन' सी बन जाती है। मुझे कई दफा लगता है कि क्या भगवान ऐसा जबरदस्ती करनेवाला शख्स है कि मनुष्य चाहे या न चाहे, उसे उसके नाम से चिल्लाते ही रहना है। इस तरह हमारी प्रार्थना भी एक यांत्रिक चीज बन गयी है। हमने दुनिया के इतिहास में देखा कि जिस श्रद्धा ने दुनिया को नया मोड़ दिया, वह श्रद्धा हमारी संस्थाओं में नहीं दीखती। बापू के पीछे हम सबके हाथ से उनका काम जिस तरह विकसित होना चाहिए था, वैसा नहीं हुआ। मैं इसके मूल में पहुँचा तो ध्यान में आया कि सब विद्याओं में श्रेष्ठ विद्या आत्मविद्या है। उसकी तरफ हमने ध्यान नहीं दिया। इसी कारण एक संस्था में रहते हुए भी आपस में मनमुटाव, मत्सर आदि चलते हैं। एक-दूसरे में मेल नहीं होता। यह सभी जगह चल रहा है—आश्रमों में भी और भूदान यात्रा में भी। इससे इन दिनों मेरा मन व्यथित और चिंतित-सा है। इससे हमारे काम टिकनेवाले नहीं हैं। वे ऊपर-ऊपर चलते हैं। पुस्तकों द्वारा दी जानेवाली तालीम को हम गौण मानते हैं, इसलिए उद्योगों के जरिये तालीम देने की बात हमने चलायी है। परन्तु गुणविकास की जो बुनियादी बात है, वह नहीं आयी, क्योंकि हमारा चिंतन भी सेक्युलर चलता है। सेक्युलर का मतलब "सब धर्मों के लिए समान आदर", यह हो, तब तो ठीक है। परन्तु जिससे धर्मश्रद्धा ही नहीं बनती, ऐसा आज के सेक्युलर का अर्थ चल रहा है। आश्रम में प्रार्थना का बना-बनाया ढाँचा चलता है, परंतु बुनियादी चीज जिस निष्ठा से बापू ने शुरू की, उस निष्ठा का अभाव सर्वत्र दीखता है। प्यारेलाल जी कह रहे थे कि बापू ने जिस निष्ठा से सत्याग्रह-आश्रम शुरू किया, वह निष्ठा कहीं एक जगह तो दीखनी चाहिए। मैंने कहा कि एक से नहीं चलेगा, हमारे सभी आश्रमों में वह होनी चाहिए। कई कारणों से यह न्यूनता बापू के रहते हुए भी उनकी चलायी हुई संस्थाओं में रही। लेकिन बापू खुद ऐसे व्यक्ति थे कि जो चीजें आश्रम में नहीं थीं, उनके रहने से उनकी पूर्ति हो जाती थी। यह पूर्ति होती है, ऐसा भास होता था। उनके जाने के बाद मुझे लगता है कि वह आसमात्र ही था।

शंकराचार्य का विचार समाज में आज भी चलता है। उसका चिंतन, मनन, अध्ययन आज भी चलता है। विद्वानों द्वारा उस पर लेख लिखे जाते हैं। उसके खंडन-मंडन में बुद्धि काम करती है। यहाँ गुरु नानक ने एक अद्भुत वस्तु चलायी है। वह है स्त्रियों का सत्संग। इस प्रकार की जो बातें चलायी गयीं, वे समाज में बहुत श्रद्धा से चलीं। यह ठीक है कि अब कालक्रमेण वह कुछ मंद हो गयीं, फिर भी वह चीज चलती है। बापू के विचार में जो आध्यात्मिकता है याने जिस आध्यात्मिकता की जरूरत है, वह संतों के विचार में जिस आध्यात्मिकता की जरूरत थी, उससे ज्यादा है। क्योंकि संतों ने यह भूमिका नहीं ली थी कि हमें अपने विचार से समाज का भी परिवर्तन करना है। वैसे उनमें भी यह चीज तो थी कि मैं सत्यनिष्ठ हूँ तो मेरे इर्द-गिर्द जो लोग हैं, उन पर उनका असर होना चाहिए। मैं उनको नहीं ठगूँगा, इतना ही बस नहीं है। वे भी मुझे ठग न सकें, ऐसा होना चाहिए। मेरे इर्दगिर्द परिपूर्ण सत्य का वातावरण होना चाहिए। इस तरह यह चीज उनमें थी। परन्तु वे इसे कहते नहीं थे। अन्तःसमाधान के कारण सन्तुष्ट रहते थे। परन्तु हम तो सत्याग्रह की बात करते हैं याने समाज-परिवर्तन चाहते हैं। उसके लिए श्रद्धा की जरूरत है। अलग रहा हुआ तालीमी संघ श्रद्धा हासिल नहीं कर सकेगा, ऐसी मुझे शंका आयी। वैसे सर्व-सेवा-संघ भी यह कर पायेगा या नहीं, मैं नहीं जानता। परन्तु वह कोशिश जरूर करेगा।

मैं नयी तालीम का काम करना चाहता हूँ

इन दिनों मुझे प्रेरणा हो रही है कि नयी तालीम का मैं प्रचार करूँ। ग्रामदान, शान्ति-सेना, सर्वोदय-पात्र—ऐसा मेरा त्रिविध कार्य है। ग्रामदान और शांति-सेना ग्राम-स्वराज्य के लिए है, ऐसा मैं समझता हूँ। ग्राम-स्वराज्य का पूरा चित्र तो नहीं, लेकिन

कुछ चित्र लोगों के सामने पेश करना होता है। उसमें नयी तालीम की बात कहनी ही पड़ती है। ग्रामदानी गाँव में भी पुरानी तालीम चले तो बड़ा अधूरा काम चलेगा। उधर अक्राणीमहाल में हमारे कार्यकर्ता काम कर रहे हैं और सरकार ने भी उस प्रदेश के लिए कुछ योजना बनायी है। दोनों के सहयोग से कुछ काम चलता है। सरकार चाहती है कि तालीम का काम हम उठा लें। वहाँ से प्रो० बंग ने मुझे लिखा है कि हमें उसे स्वीकार करना जरूरी मालूम पड़ता है। इससे अब हमारे सामने एक व्यापक काम करने का सवाल खड़ा होता है। वहाँ पर करीब ३००० गाँवों को व्याप्त करना होगा। अतः हमें नयी तालीम का व्यापक रूप प्रकट करना होगा। ये सारी चीजें लोगों के सामने रखनी पड़ेंगी। इसलिए मुझे लगता है कि व्यक्तिगत तौर पर मैं नयी तालीम की ओर ध्यान दूँ। वैसे खादी, गोरक्षण दोनों मिले-जुले हैं, लेकिन थोड़ी देर के लिए उन्हें अलग सोच सकते हैं। किन्तु नयी तालीम को थोड़ी देर के लिए भी अलग नहीं सोच सकते। इसलिए राजपुरा के बाद मैंने बहुत से व्याख्यानों में नयी तालीम की बात कही है। लोगों में इस पर चर्चा भी शुरू हुई है। मैं बार-बार कहता हूँ कि आज वह काम संभव हो या न हो, लेकिन सरकार के हाथों से किसी चीज की मुक्ति करनी है तो प्रथम तालीम की करनी होगी। अभी केरल में जो चल रहा है, उससे इस बात की अधिक जरूरत महसूस हो रही है। मैं नहीं मानता कि केरल में जो चल रहा है, वह दूसरे प्रान्तों में जो चल रहा है, उससे कुछ अलग है। दूसरे प्रान्तों में भी तालीम पर सरकार का पूरा कंट्रोल है, किसी को चूँ नहीं करने दिया जाता। फर्क इतना ही है कि कम्युनिस्टों में कार्यक्षमता होती है, जो दूसरों में नहीं होती। लेकिन कुल प्रांतों में एक ही टेक्स्टबुक चले, यह कितनी भयानक चीज है। इसलिए मैं बार-बार कहता हूँ कि तालीम सरकार के हाथ में नहीं, जनता के हाथ में होनी चाहिए। इसलिए ग्रामदान, सर्वोदय-पात्र और शांतिसेना के साथ-साथ नयी तालीम का काम भी उठाना चाहता हूँ। शांतिसेना के लिए नयी तालीम जरूरी है, ग्रामस्वराज्य के लिए नयी तालीम जरूरी है। इस तरह उस पर दुगुना सोचकर जोर देना जरूरी है। इसीलिए मुझे लगा कि सर्व-सेवा-संघ की पूरी ताकत इसमें लगे। ◆◆◆

प्रार्थना-प्रवचन. विलासपुर (कश्मीर) १-६-'५९

जीवन में कुदरत-सा मेलजोल बढ़ायें

मैं चाहता हूँ कि बच्चा-बूढ़ा, भाई-बहन हर कोई दान दे। हर बच्चा यह महसूस करे कि मैं खाता हूँ तो खाने के पहले मुझे समाज को कुछ न कुछ देना चाहिए। जम्मू-कश्मीर में ४० लाख लोग हैं, जो सरकार को थोड़ा टैक्स देते हैं और उसीके आधार पर सरकार काम करती है। लेकिन जनता की तरफ से कुछ काम होना चाहिए। आज गाँव-गाँव में अनेक मसले हैं, जिनका समाधान अभी होना है। कई बेजमीन दुःखी पड़े हैं, कई निरुद्योगी हैं। इन सब समस्याओं को हल करने के लिए गाँव के लोगों को आगे आना चाहिए।

जो खाये, सो दान दे

यहाँ कुछ लोगों ने दान दिया है। उन्होंने अपना दिल खोला है, इसलिए हम उन्हें धन्यवाद देते हैं। लेकिन क्या थोड़े लोगों के दान के आधार पर सब लोग खा पायेंगे? नहीं! इसलिए ऐसा खयाल कायम होना चाहिए कि जो खाये, वह दान दे। अगर ऐसा हो जाय तो जम्मू-कश्मीर का रूप ही बदल जाय। जिसके पास जमीन है, वह जमीन का दान दे। सरकारी अधिकारी, व्यापारी आदि भी अपनी संपत्ति का हिस्सा संपत्ति-दान में दें। जो कुछ नहीं दे सकते, वे श्रमदान दें। बच्चा भी सूत कातकर दे। साथ ही सभी लोग अपने-अपने घर में सर्वोदय-पात्र रखकर उसमें रोज मुट्ठी भर अनाज डालें। सर्वोदय के लिए, शांति-सेना के लिए हरएक को कुछ देना चाहिए। यह विचार सब कबूल करें तो हम समझेंगे कि हमारा यहाँ आना सार्थक हुआ।

सुन्दर प्रदेश में झगड़े क्यों?

जम्मू-कश्मीर में मैं अपनी ओर से कुछ नहीं करना चाहता और न दूसरों से ही कराना चाहता हूँ। मैं चाहता हूँ कि कश्मीर सारी दुनिया को जोड़नेवाली कड़ी बन जाय। आज कश्मीर स्वयं एक मसला बन बैठा है। जब कि होना यह चाहिए कि कश्मीर का कोई मसला न हो और वह दुनिया के मसले हल करे। आखिर ऐसे खूबसूरत प्रदेश में झगड़े क्यों हों? यहाँ जो सियासी झगड़े चल रहे हैं, उन्हें मिटा दें तो ताकत बनेगी।

आज कश्मीर देखने के लिए जितने विदेशी यात्री यहाँ आते हैं, उतने हिन्दुस्तान के दूसरे किसी सूबे में नहीं आते। हजारों लोग इसे देखने के लिए आते हैं तो क्या यहाँ सिर्फ पहाड़, पेड़, पत्थर, फूल, झील ही देखेंगे? वे क्या इन्सान को नहीं देखेंगे? अगर वे लोग यह देखेंगे कि इस खूबसूरत सूबे के लोग आपस में लड़ते-झगड़ते नहीं, आलस में नहीं बैठे रहते, दोनों हाथों से खूब काम करते हैं, दूसरों को देकर ही खाते हैं—तो वे अपने देशों में जाकर कश्मीर की इज्जत बढ़ायेंगे। जब हम इज्जत के लायक काम करेंगे तभी उनके जरिये हमारी इज्जत बढ़ेगी।

कश्मीर का कर्तव्य

कश्मीरवालों की बड़ी हैसियत है। वे हिन्दुस्तान के लिए बहुत कुछ कर सकते हैं। उसके लिए एक ही बात करनी है। जैसे कुदरत में मेलजोल है, वैसे हमारे जीवन में भी हो। आम के पेड़ में जो लकड़ी है, वह खाने के नहीं, जलाने के काम में आती है। उसी पेड़ में फल, फूल पत्ते भी होते हैं। लकड़ी का उस मीठे आम से क्या संबंध? लेकिन एक बीज बोयें तो उसीमें से लकड़ी, फल, फूल, पत्ते निकलते हैं। पेड़ का एक पत्ता दूसरे पत्ते से मिला होता है। लेकिन सारे पत्ते एक ही पेड़ के हैं। लकड़ी, पत्ते, फल, फूल, सब में एक प्रेमरस भरा है। पेड़ को ऊपर से सूर्य की किरणें मिलती हैं। नीचे जड़ें हैं, वहाँ से पानी मिलता है, हवा भी मिलती है। अगर हवा, पानी या रोशनी इनमें से एक भी चीज न मिले तो पेड़ नहीं बढ़ेगा। इस तरह कुदरत में सारी चीजें मिली-जुली रहती हैं, इसीलिए खूबसूरती पैदा होती है। सृष्टि में जैसे अन्दर एक रस है, वैसे मनुष्य के जीवन में प्रेमरस भरा रहेगा तो सृष्टि के समान मनुष्य-समाज भी हरा-भरा रहेगा। ◆◆◆

अनुक्रम

१. तालीमी संघ ... पठानकोट, २० मई '५९ पृष्ठ ५०१
२. जीवन में कुदरत ... विलासपुर १ जून '५९ ,, ५०४

श्रीकृष्णदत्त भट्ट, अ० भा० सर्व-सेवा-संघ द्वारा भार्गव भूषण प्रेस, वाराणसी में सम्पादित, मुद्रित और प्रकाशित।
पता : गोलघर, वाराणसी (उ० प्र०) फोन : १३९१ तार : 'सर्व-सेवा' वाराणसी